प्रज्ञा पुरस्कार प्राप्त कृति

# आधुनिक चित्रकला का इतिहास

र. वि. साखलकर

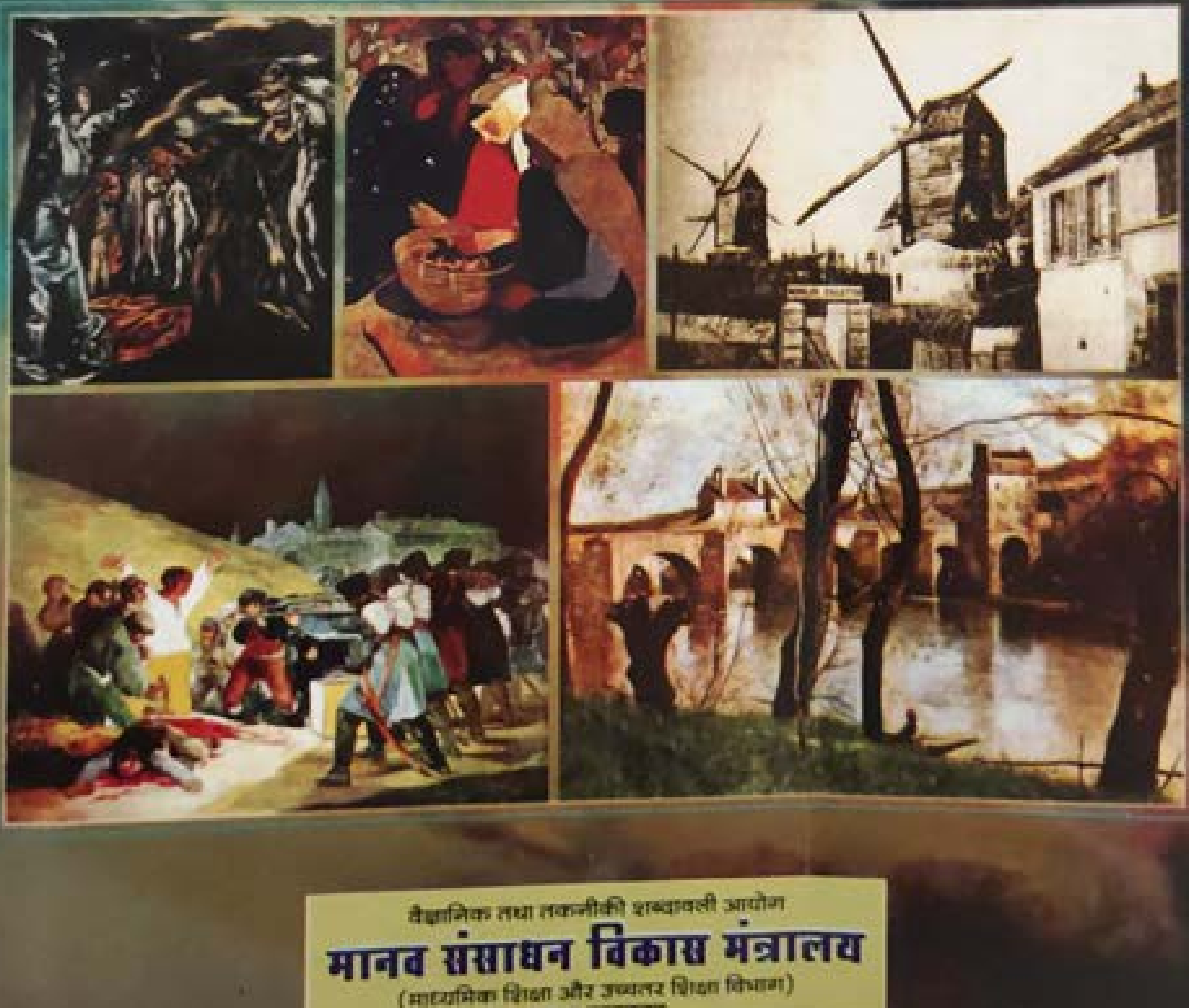

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
**मानव संसाधन विकास मंत्रालय**
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

# दादावाद व अतियथार्थवाद

दादावाद किन्हीं कलासम्बन्धी सिद्धान्तों को प्रस्थापित करने के विचार से किया आन्दोलन नहीं था। वह जीवन, कला व दर्शन के प्रति अराजक विचारों का दृष्टिकोण था; व इस अराजक दृष्टिकोण को लेकर दादावादियों ने परम्परागत एवं प्रचलित सभी सिद्धान्तों के विरोध में अपनी कृतियों एवं कार्यक्रमों द्वारा प्रदर्शन किया जिसके पीछे पुराने विचारों को, नीतिनियमों को नष्ट करने के अतिरिक्त कोई अन्य ध्येय नहीं था, न कोई सर्जनात्मक विचार। एक प्रकार से यह विनाशवाद[1] का कलाक्षेत्रीय रूप था।

प्रथम विश्वयुद्ध से मानव-समाज में कटुता व निराशा का वातावरण फैल गया था व आंधीग्रस्त पाश्चात्य समाज की विनाशक परिस्थिति के अगतिक होकर उपहास के साथ किये, स्वीकार में दादावाद का जन्म हुआ।

दादा कलाकारों ने विश्वयुद्ध में न केवल प्रचलित सौन्दर्य कल्पना के अन्त को देखा बल्कि युद्ध की भीषणता से उनका धर्म, नीति व सामाजिक मूल्यों पर विश्वास नहीं रहा जो उनके विचार से मानवता को अन्याय व संहार से बचाने में असमर्थ रहे। जैसी युद्ध की भीषणता बढ़ती गयी, मानव-जीवन कूड़े कचरे के समान बिखर गया; मानव की 'सत्यं शिवं, सुन्दरम्' की कल्पना नष्ट हो गयी। योरपीय साहित्यिकों व कलाकारों के मन में ठनी कि सब संसार अर्थहीन है व इसी विचार को सत्य मान कर उसकी अभिव्यक्ति के लिये वे नये ढंग के बेताल कलाविरोधी [2] प्रदर्शनी करने को उद्यत हुए। उनकी प्रदर्शनियों में पुराने बस-टिकट, रस्सी के टुकड़े, पुरानी खराब घड़ियां, लकड़ी के गुटके, टूटे बटन, पुराने चित्र, फोटो, टूटी-फूटी चीजें वगैरह सब तरह का रद्दी सामान रखा जाता व उन पर अनोखे शीर्षक लिखे जाते। उन वस्तुओं को वे या तो पट पर चिपकाते या शिल्पकृति के समान चौके पर रखते व अस्वाभाविक गाम्भीर्य के साथ उनको कलाकृतियों के रूप में प्रदर्शित करते।

दादावाद का जन्म 1916 में ज्यूरिख के 'काबारे वोल्तेर'[3] में हुआ। जर्मन विचारक व साहित्यिक ह्यूगो बॉल ने सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक मूल्यों का पुनर्विचार करने के उद्देश्य से 'काबारे वोल्तेर' का उद्‌घाटन किया था। भिन्न देशों के साहित्यिक व कलाकार विश्वयुद्ध की भयानकता से बचने के लिए ज्यूरिख में रहने आये थे। ये 'काबारे वोल्तेर' में मिलते व उनमें विचारों का आदान-प्रदान होता। किन्तु उनका मूल्यों का पुनर्विचार करने का तरीका अनोखा था - वह था विदूषकीय परिहास। विदूषकीय विपरीत तरीकों से वे प्रत्येक आदर्श विचार पर सन्देह व्यक्त करके उसका उपहास करते। रुमानियन कवि ट्रिस्टान त्सारा, अल्सेशियन चित्रकार हान्स आर्प व हंगेरियन चित्रकार मार्सेल यांको ने ह्यूगो बाल को साथ दिया।

'दादा' का नामकरण अनोखे ढंग से किया गया था। जर्मन-फ्रेंच शब्दकोष को चाकू से खोला गया व जो शब्द पहले पहल दिखाई दिया वह था "दादा"[4] (दादा = झूलने वाला लकड़ी का घोड़ा); बस, उसी नाम से उन्होंने अपने आन्दोलन का प्रसिद्धिकरण किया। दादा चित्रकार व साहित्यिक दैवयोग को कितना महत्व देते थे उसका इससे परिचय होता है। भविष्यवादियों के सम्मेलनों के समान, दादा सम्मेलनों में वादविवाद, हुल्लड़बाजी व जोरशोर हुआ करते किन्तु 'दादा' में भविष्यवादियों के आत्मविश्वास व आशावाद के स्थान पर उपहासात्मक कटुता व निराशावाद आरूढ़ थें। वे काव्य को अभिव्यक्ति या विचारप्रदर्शन का साधन नहीं मानते; उनके लिए काव्य मनोवैज्ञानिक अवस्था की अनियंत्रित आंतरिक प्रतिक्रिया था व उसका तर्क या विवरण से कोई सम्बन्ध नहीं था। दादा कलाकारों की कोई निराली चित्रण पद्धति नहीं थी; वे घनवाद, भविष्यवाद व वस्तुनिरपेक्ष कला को चित्रण में परिणामकारक मानते। त्सारा कागज के टुकड़ों पर शब्दों को लिखकर उनको टोप में डाल देते व जो हाथ में आ जाये उसको निकाल लेते; उस पर जो शब्द संयोग से लिखा होता उसको वे कागज पर उतारते व इसी प्रकार शब्दों को क्रमशः लिखकर जो शब्द-शृंखला बन जाती उसको वे काव्य कहते। आर्प वस्तुनिरपेक्ष आकारों को टुकड़ों में काटकर, उन टुकड़ों को इतस्तत: बिखेरते व उसी क्रम में उनको चिपकाकर चित्र रचना करते।

चित्रकार पिकाबिया के 'दादा' में शामिल होने से दादा-चित्रण की एक निजी शैली विकसित होने लगी। पिकाबिया ने दादा कलाकारों को मार्सेल द्युशां की चित्रण सम्बन्धी कल्पनाओं से परिचित कराया। जिस समय ज्यूरिख में दादा आन्दोलन जोर पकड़ रहा था, न्यूयार्क में भी एक कलाकार-मण्डल 'दादा' के समान प्रयोगों में व्यस्त था। उसके प्रणेता थे मार्सेल द्युशां व फ्रान्सि पिकाबिया। ये कलाकार छायाचित्रकार आल्फ्रेड स्टीगलित्स की पांचवें मार्ग के 291 क्रमांक पर स्थित वीथिका में सम्मिलित होते। स्टीगलित्स की मासिक पत्रिका में 1913 से दादावाद के समान कविताएं व रेखाचित्र प्रकाशित हो रहे थे। 1915 से उन्होंने '291' नाम से मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था।

## मार्सेल द्युशां व पिकाबिया :

पिकाबिया व द्युशां का 1910 में पैरिस में परिचय हुआ। उस समय वे घनवादी पद्धति के चित्रण करते थे। उन्होंने सेक्स्यों दोर प्रदर्शनी में भाग लिया था व सुरीलवाद के

विकास में योगदान किया था। अब कला से नैसर्गिक, मानवीय एवं बौद्धिक तत्वों को हटा कर कला की नयी परिभाषा तैयार करने की चर्चा शुरू हुई । यंत्रयुगीन आकारों के नवनिर्माण ने कलाकारों का ध्यान आकर्षित किया। भविष्यवादियों ने घोषित किया था कि तेज चलने वाली गाड़ी 'सामोथ्रेस की विजय' शिल्पाकृति से अधिक सुन्दर है; देलोने को एफेल मीनार के विशाल रूप में उदात्त का दर्शन हुआ था; लेजे ने यंत्र के सर्वव्यापित्व को पहचान कर मानवाकृतियों को यंत्रसम चित्रित किया था; किन्तु 'दादा' कलाकारों को यंत्र के निर्माण में मानवजाति की गुलामी व उपहास के तत्व दिखायी दिये। उन्होंने चक्र, तार, यंत्र के पुर्जे आदि वस्तुओं से युक्त अनोखी, यंत्रसम किन्तु पूर्ण अनुपयुक्त रचनाओं को चित्रित करके मानव की यंत्र की गुलामी का उपहास किया। इससे पहले फूलों, पौधों व प्राणियों के चित्रों से परिपूर्ण पुस्तकों से मानव का मनोरंजन होता था व अब उद्योगनिर्मित उपयुक्त वस्तुओं के सचित्र सूचीपत्रों में नवीन आरामदायक सुखसाधनों का वर्णन पढ़कर मानव भविष्य की कल्पना नगरी के ख्वाब देखने लगा था; किन्तु दादावादियों ने उसका भग्ननिरास किया।

1911 में द्युशां ने यंत्रसम आकृति को चित्रित करके उसको शीर्षक दिया 'कॉफी की चक्की'[5]। इसके द्वारा जंगली जाति के क्रूर व भयानक देवताओं के पूजन से आधुनिक मानव की यंत्रपूजा की तुलना करके उन्होंने मानव की मूर्खता का उपहास किया था। 1912 में उन्होंने भविष्यवादियों के गतित्व के सिद्धान्त से प्रभावित होकर, अपना प्रसिद्ध चित्र 'जीने पर उतरती हुई नग्नाकृति'[6] बनाया। 1914 से उन्होंने 'बनी बनायी'[7] वस्तुओं को अपरिचित अनोखे वातावरण में रखकर व विचित्र काल्पनिक शीर्षक देकर कलाकृति के रूप में प्रदर्शित करना शुरू किया व अपनी उपहासगर्भ कला को नया मोड़ दिया। ऐसे वस्तुदर्शन से प्रेक्षकों में हंसी, क्रोध या भय की भावना का निर्माण होता व 'दादा' कला का उद्देश्य सफल होता। 1917 में हुई प्रदर्शनी में उन्होंने मूत्रपात्र पर 'आर मट' नाम से हस्ताक्षर करके 'फँव्वारा'[8] शीर्षक से उसको प्रदर्शित किया। द्युशां की 'बनी बनायी कला' में प्रत्यक्ष कठोर वास्तविकता को नया अकल्पित अर्थ देने का सामर्थ्य था।

द्युशां ने 'बनी बनायी' की परिभाषा की है- "ऐसी कलाकृति जिसका कोई कलाकार नहीं होता।_मैं इसके द्वारा कलाकार को समाज में दिये गये देवता के समान स्थान से पदच्युत करना चाहता हूँ।_'बनी बनायी' का चुनाव आप नहीं करते, वह आपको चुनती है। जहां, अच्छी या बुरी, रुचि का सवाल आता है वहाँ कला नहीं होती; रुचि कला का दुश्मन है।" वे आगे कहते हैं, "व्युत्पत्ति के अनुसार 'कला' का अर्थ है 'करना'। अतः प्रत्येक व्यक्ति कलानिर्मिति करता है, व सम्भव है कि भविष्य की सदियों में कलानिर्मिति होती रहेगी किन्तु उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दे·।। ।_मैरे प्रयत्नों के बिना कोई चीज संयोग से बनती है तो मुझे खुशी होती है।_सब संसार संयोग पर आधारित है। जिस संसार में हम जीवित हैं उसकी घटनाओं की परिभाषा ही संयोग है।_फ्रैंच भाषा में मुहावरा है, 'चित्रकार के समान मूर्ख'। (वे चित्रकार को मूर्ख मानते थे जबकि कवि व साहित्यिक को बुद्धिमान।)_मैं कलाकार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हूँ और इस बात की मुझे खुशी है।" द्युशां का कथन,

प्रत्येक व्यक्ति कलानिर्मिति करता है" व ए. के. कुमार स्वामी का विचार, "प्रत्येक मनुष्य विशेष प्रकार का कलाकार है" इनमें कोई अन्तर नहीं है।

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होते ही द्युशां न्यूयार्क गये व 1915 में पिकाबिया भी वहां पहुंचे। न्यूयार्क में आये हुए शरणार्थी कलाकारों के विचारों में भी अस्वस्थता व क्रान्तिवादी दृष्टिकोण थे जैसे ज्यूरिख के दादा कलाकारों के थे। यहां द्युशां ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'ब्रह्मचारियों से विवस्त्र की गई वधू'[9] तैयार की। यह कृति संयोग व स्वयंचालन[10] के सिद्धान्त का पालन करके यंत्रसम आकारों की योजना करके, कांच के अन्दर बनायी थी। इस समय द्युशां स्वयं को कला-विरोधी मानते थे। 1916 में उन्होंने कुर्सी पर साइकिल को बिठाकर अपनी प्रथम चंचलकृति का निर्माण किया। 1920 में उन्होंने 'घूमती हुई कांच की तश्तरियां' व 1935 में 'घूमते शिल्प'[11] को बनाया जिनमें घूमते हुए चंचल आकारों का समावेश करके उन्होंने दृष्टिभ्रम को रचना में स्थान दिया। इन रचनाओं से 'चंचलकृति'[12] का नया क्षेत्र खुल गया।

द्युशां के साथ तरुण अमेरिकी कलाकार मॅन रे काम करते थे। शुरू में वे जॉर्ज बेलोस व रॉबर्ट हेनरी के शिष्य थे व 'आर्मरी प्रदर्शनी' के बाद घनवादी चित्रण करने लगे थे। उन्होंने छाया चित्र के कांचों पर प्रयोग करके 'रेयोग्राम'[13] की निर्मिति की। छाया चित्रों की छपाई में भिन्न कांचों का एक साथ प्रयोग करके वे काल्पनिक अद्भुत प्रभाव का निर्माण करते। रेयोग्राफी आधुनिक छायाचित्रण की प्रगति में काफी सहायक रही।

इस प्रकार उपहास व निन्दा के हेतु से की गई 'दादा' की विदूषकीय खेल-कीड़ा से भी आधुनिक कला व निर्माण को सर्जनात्मक दिशा में गति मिली। 'दादा' अंकनपद्धतियों से अक्षरकला[14] की नयी पद्धतियों के विकास में असाधारण लाभ हुआ। दादा चित्रकारों ने अक्षरों की रचना में एवं संयोजन में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये; वे अक्षरों को तिरछे अंकित करते, बड़े अक्षरों की, कहीं बीच में, अनपेक्षित स्थानों पर योजना करते व सम्पूर्ण पन्ने को कलाकृति के समान सौन्दर्यात्मक या रचनात्मक दृष्टिकोण से रूपायित करते। 'दादा' से सिनेमा-निर्माण-कला को भी लाभ पहुंचा; स्वीडिश चित्रकार वाइकिंग एग्गेलिंग ने हान्स रिश्टेर के सहयोग से प्रथम वस्तुनिरपेक्ष चित्रपट का निर्माण किया। आधुनिक कलाविद्यालयों में माध्यमों के साथ निरुद्देश्य खेलक्रीड़न सर्जन का परिणामकारक तरीका माना गया है और उसको शिक्षा के कार्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान है व इसका श्रेय 'दादा' को है।

द्युशां ने सहजज्ञान से तीन तत्वों को कला के मूलाधार माना एवं स्वाभाविक तरीकों से किन्तु निश्चय के साथ, प्रयोग कर के उनको कलानिर्मिति में उपयुक्त सिद्ध किया - प्रथम, गतित्व के विचार से उन्होंने घनवाद के समयावच्छेद व भविष्यवाद के गतित्वदर्शी आकारों से प्रारम्भ करके चंचल कृतियों की निर्मिति की; दूसरा, उपहास के विचार से उन्होंने सहजसिद्ध या आकस्मिक तत्वों के अनपेक्षित परिणाम को कला में स्थान देना शुरू किया जिससे निरुद्देश्य खेलक्रीड़न व परिहास कलानिर्मिति में अचेतन अनुभूतियों को साकार करने के प्रभावी साधन बन गये; तीसरा, विषय वस्तु के परिणामकारक दर्शन के विचार से, उन्होंने वस्तु को प्रथम व्यंग्यात्मक व बाद में पृष्ठभूमि से पृथक् व स्वतंत्र रूप से अंकित किया और

अंत में, 'बनीबनायी वस्तु' को भी बुद्धि व कौशल से कलात्मक रूप प्रदान किया (इस पद्धति को आधुनिक कला में 'महत्तर सत्य' के साक्षात्कार का एक महत्वपूर्ण तरीका माना गया है)। ये तीनों विचार दादा रूपांकन पद्धति के आधार बन गये।

1916 में पिकाबिया बार्सेलोना गये जहाँ उनको मारी लोरांसँ व ग्लेजे मिले एवं उन्होंने '391' नामक मासिक-पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। 1919 में पिकाबिया ज्यूरिख गये एवं न्यूयार्क व ज्यूरिख में स्वतंत्र रूप से जन्मे दादा एकत्र आ गये और दादावाद का जर्मनी व फ्रांस में अविलम्ब प्रसार हो गया।

1917 में ह्यूल्सेनबेक ज्यूरिख से वापस बर्लिन चले गये जहां जनता भूख, दुःख व राजनैतिक अस्थिरता से संत्रस्त थी। उन्होंने दादा घोषणापत्र में जाहिर किया, "दादा के साथ एक नये यथार्थ ने जन्म लिया है। जीवन में एकसाथ ध्वनि, रंग व आत्मिक अनुभूतियों की अव्यवस्था प्रतीत होती है और उसको दादा ने अपरिहार्य अपरिवर्तित यथार्थ रूप में स्वीकारा है, जिसमें-हृदयभेदी करुण पुकार, दैनन्दिन विवेक रहित जीवन के मनोविज्ञान का आतंक व पाशवी सत्य—सब कुछ जैसे कि वैसे हैं। _दादावाद ने ही सर्वप्रथम जीवन के प्रति सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण को अस्वीकारा है और उसके लिए उसने नीति, संस्कृति व अन्तर्मुखवृत्ति की कपोलकल्पित असत्य घोषणाओं को छिन्नविछिन्न किया है जो दुर्बल मानव के लिए एक बहाना मात्र है"। दादावाद का जर्मनी में शीघ्र प्रसार हुआ किन्तु जर्मन दादावाद का लक्ष्य मुख्य रूप से राजनैतिक उपहास था और उसके प्रमुख कलाकार थे ग्रोस। उनकी कला के कठोर रेखांकन, मोंताज कृतियों, घनवादी व भविष्यवादी अंकनपद्धतियों के प्रयोग व अभिव्यंजनावादी आवेश के लक्ष्य थे राजनैतिक गुटबाजी, सैनिकशाही व भ्रष्टाचार।

कलोन में माक्स एर्न्स्ट (जो शुरू में दर्शन के विद्यार्थी थे) पिकासो व कान्डिन्स्की से प्रभावित थे व अभिव्यंजनावाद का अध्ययन कर रहे थे। 1913 में उनका पिकाबिया से परिचय हुआ था। विश्वयुद्ध शुरू होने पर जब पिकाबिया कलोन आये तब माक्स एर्न्स्ट दादा आन्दोलन में शामिल हुए एवं वार्गेल्ट के साथ उन्होंने कलोन में दादा कृतियों का निर्माण शुरू किया। द्युशां की 'बनी बनायी' की कल्पना उनको सबसे अधिक पसन्द आयी। उन्होंने टेक्नीकल रेखांकन की पुस्तकों में छपी आकृतियों को काटकर विचित्र राक्षसी आकृतियों की चित्रसृष्टि का निर्माण किया जिसमें उन्होंने आकस्मिक व अनपेक्षित के तत्वों को प्रयोगान्वित किया था। उन्होंने पुरानी मासिक पत्रिकाओं व विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकों से रेखाचित्रों को टुकड़ों में काटकर उन टुकड़ों को पुनः एक साथ, भिन्न तर्कहीन क्रम में रख कर (जो पद्धति 'मोंताज'[15] नाम से प्रसिद्ध हुई) अद्भुत दर्शन की कृतियां निर्माण कीं; उदाहरण के लिये उन्होंने प्रकाशयंत्र को पेड़ पर चिपकाया व झिंगुर के खण्डचित्र को नाव पर चिपकाया। इस प्रकार प्रत्यक्षसृष्टि से आकारों को चुनकर उनकी पुनर्रचना से वे काल्पनिक सृष्टि का निर्माण करते। एर्न्स्ट की कोलाजकृतियों से अन्तर्मन व अचेतन प्रेरणाओं का कलात्मक महत्व बढ़ गया। 1922 में वे पैरिस गये जहां उन्होंने अतियथार्थवाद के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया।

1920 में कुर्ट श्विटेर्स ने हानोवर में 'दादा' को एक निराले रूप में जन्म दिया जिसको वे 'मर्त्स' कहते। 'मर्त्स' एक अर्थहीन शब्द था व 'कोम्मर्त्स'[16] शब्द की योजना

करके कोलाजकृति बनाते समय आरम्भ के अक्षर कट जाने से वह शब्द रह गया था। श्विटेर्स की 'मर्त्स' कृतियों का उद्देश्य केवल रचनात्मक नहीं था। शुरू में वे प्रभाववादी चित्रण करते थे व कुछ समय तक उन्होंने अभिव्यंजनावादी चित्र बनाये। उसके पश्चात् पिकासो का अनुसरण करके उन्होंने कोलाजकृतियां बनायीं व अंत में दादा के कलाविरोधी अद्भुतवादी विचारों का कोलाजकृतियों से मिलाप करके उन्होंने नवीन ढंग की कृतियां बनायीं। कील, टिकट, बाल वगैरह वस्तुओं का संग्रह करके वे उनसे चित्र रचना करते। उनके विचार से ऐसी रचना से ऐन्द्रजालिक परिणाम का निर्माण होकर वास्तविकता के पीछे छिपे सत्य से हम परिचित हो जाते हैं। वे अपनी रचनाओं को मर्त्स कविता, मर्त्स चित्र व मर्त्स कोलाज कहते। वे मानते कि जंगली जाति के देवता के समान उनकी मर्त्स कृति जीवन की शून्यता को अर्थ प्रदान करती है। अब उन्होंने पुरानी वस्तुओं के संग्रह के लिए एक मन्दिर के समान विशाल गृह बनवाया जिसको वे 'मर्त्सबौ'[17] कहते। अपनी उर्वरित आयु में उन्होंने कई जगह मर्त्सबौ बनवाये। सभी दादा कलाकारों में से श्विटेर्स सबसे अधिक विचारशील व एकनिष्ठ थे। उनके कुछ 'मर्त्स बिल्ट' (मर्त्सबिल्ट = रद्दी चित्र[18]) आकार व रेखाओं के सौन्दर्य व मनोहर रंगसंगति के उत्तम उदाहरण हैं।

1919 में त्सारा व पिकाबिया पैरिस गये और वहां उन्होंने 'दादा' कार्यक्रम शुरू किया। वे 'साहित्य'[19] नामक मासिक पत्रिका से सम्बन्धित कवियों के मण्डल में शामिल हुए जिसमें ब्रेतों, आरागों व सुपो प्रमुख थे। ये कवि त्सारा से अधिक विवेकशील थे; ये अन्तर्मन, ख्वाब की दुनिया व ऐन्द्रजालिक अनुभूतियों को कला द्वारा चित्रित करना चाहते एवं उसके लिए आकस्मिक घटनाओं, अवचेतन क्रियाओं, विकृत प्रतिमाओं व प्रतीकों से सहायता लेते। अत: उनका दादा कलाकारों से शीघ्र ही परिचय हुआ किन्तु दादावाद का फ्रैंच कलाकारों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

कुछ बरसों तक दादा साहित्य व कला का घनिष्ठ सम्बन्ध था व उनके प्रसार व सफलता के दो प्रमुख कारण थे; प्रथम उनका बुद्धिवाद-विरोधी कार्यक्रम (कला को नष्ट करने के लिए कला) विश्वयुद्धजनित निराशा के वातावरण के अनुकूल था, और दूसरा, उनकी 'मनःपूतं समाचरेत्' पद्धति की पागल प्रदर्शनियाँ, लोकविलक्षण व्यवहार, मनमौजी नृत्य वगैरह बातों ने समाज को परिस्थिति से बढ़े हुए मानसिक तनाव को हल्का करने का साधन प्राप्त हुआ। पिकासो व ग्रोस जैसे विचारक कलाकार भी दादावाद की ओर आकर्षित हुए थे किन्तु कुछ समय में ही वे स्वतंत्र विचार से स्थायी महत्व की कलाकृतियों को निर्माण करने के उद्देश्य से उससे पृथक् हो गये। आर्प व माक्स एर्न्स्ट जैसे बुद्धिमान चित्रकार अपने दृष्टिकोण को सुनिश्चित रूप देने में व्यस्त हो गये एवं कला का अन्त करने के अपने उद्देश्य से जन्मे दादा का अन्त हुआ।

दादा का परमोत्कर्ष उसकी 1920 में पैरिस में हुई प्रदर्शनी में देखने को मिला; इसमें मूर्तियां व चित्र रखे गये, कवि सम्मेलन हुए, संगीतसमारोह का आयोजन किया गया व सभी कार्यक्रम दादा सिद्धान्तों के अनुसार हंसी-मजाक, जोर-शोर व उपहास से ओतप्रोत थे। द्युशां ने मोनालिसा की प्रतिकृति को होठों पर मूंछे चित्रित करके प्रदर्शित किया व उसको शीर्षक

दिया 'ल्हुक[20]। पिकाबिया ने एक चौखटे में खिलौने का बन्दर रख दिया और उसको शीर्षक दिया 'सेजान का व्यक्तिचित्र'। इस प्रकार दादा कलाकारों ने सौन्दर्य की परम्परागत कल्पनाओं व आधुनिक कला के महान आदर्शों का उपहास किया। दादा का जन्म मानव विकास, यंत्रयुग व शिष्टाचार की निंदा करने हेतु हुआ था; पिकाबिया की कृति 'कामुकता का प्रदर्शन[21] इसी उद्देश्य से बनायी गयी थी और उसमें निरुपयुक्त यंत्रसम रचना को चित्रित करके यंत्रयुग का उपहास किया था।

1922 में दादा कलाकारों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें त्सारा व आँद्रे ब्रेतों ने एक दूसरे का विरोध किया। ब्रेतों ने फ्रेंच कलाकार आरागों, सुपो व एल्वार व कुछ स्विस कलाकारों को अपने गुट में शामिल किया व दो साल के अन्दर ही एक नये आन्दोलन का जन्म हुआ जिसमें दादा के बुद्धिवाद-विरोधी विचारों के साथ, मानव के अन्तर्मन के आंतरिक रहस्यों की खोज का उद्देश्य प्रमुख रूप में सामने रखा गया; यह था अतियथार्थवाद।